श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

कपिल गीता तृतीय अध्याय(3.23)

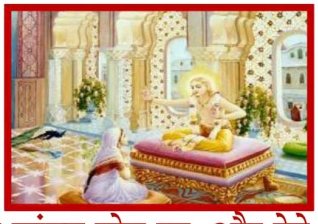

वर्णन करने सांख्य योग का, और देने को ज्ञान ।
गुरु रूप में कपिल मुनि थे, देवहूति शिष्य समान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।
देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

श्रीमद्भागवतमहापुराणम्
तृतीयः स्कंधः
॥ अथ त्रयोविं(म्)शोऽध्यायः॥

मैत्रेय उवाच

पितृभ्यां(म्) प्रस्थिते साध्वी, पतिमिङ्गितकोविदा ।
नित्यं(म्) पर्यचरत्प्रीत्या, भवानीव भवं(म्) प्रभुम् ॥ 1॥

श्रीमैत्रेयजीने कहा- विदुरजी! माता-पिताके चले जानेपर पतिके अभिप्रायको समझ लेनेमें कुशल साध्वी देवहूति कर्दमजीकी प्रतिदिन प्रेमपूर्वक सेवा करने लगी, ठीक उसी तरह, जैसे श्रीपार्वतीजी भगवान् शङ्करकी सेवा करती हैं ।

विश्रम्भेणात्मशौचेन, गौरवेण दमेन च ।
शुश्रूषया सौहृदेन, वाचा मधुरया च भोः ॥ 2॥

विसृज्य कामं(न्) दम्भं(ञ्) च, द्वेषं(लँ) लोभमघं(म्) मदम् ।

अप्रमत्तोद्यता नित्यं(न्), तेजीयां(म्)समतोषयत् ॥ 3॥

उसने काम-वासना, दम्भ, द्वेष, लोभ, पाप और मदका त्यागकर बड़ी सावधानी और लगनके साथ सेवामें तत्पर रहकर विश्वास, पवित्रता, गौरव, संयम, शुश्रूषा, प्रेम और मधुरभाषणादि गुणोंसे अपने परम तेजस्वी पतिदेवको सन्तुष्ट कर लिया ।

स वै देवर्षिवर्यस्तां(म्), मानवीं(म्) समनुव्रताम् ।

दैवाद्गरीयसः(फ्) पत्यु-राशासानां(म्) महाशिषः ॥ 4॥

कालेन भूयसा क्षामां(ङ्), कर्शितां(वँ) व्रतचर्यया ।

प्रेमगद्गदया वाचा, पीडितः(ख्) कृपयाब्रवीत् ॥ 5॥

देवहूति समझती थी कि मेरे पतिदेव दैवसे भी बढ़कर हैं, इसलिये वह उनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखकर उनकी सेवामें लगी रहती थी। इस प्रकार बहुत दिनोंतक अपना अनुवर्तन करनेवाली उस मनुपुत्रीको व्रतादिका पालन करनेसे दुर्बल हुई देख देवर्षि-श्रेष्ठ कर्दमको दयावश कुछ खेद हुआ और उन्होंने उससे प्रेमगद्गद वाणीमें कहा ।

कर्दम उवाच

तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः(श्),

शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ।

यो देहिनामयमतीव सुहृत्स्वदेहो,

नावेक्षितः(स्) समुचितः(ह्) क्षपितुं(म्) मदर्थे ॥ 6॥

कर्दमजी बोले – मनुनन्दिनी! तुमने मेरा बड़ा आदर किया है। मैं तुम्हारी उत्तम सेवा और परम भक्तिसे बहुत सन्तुष्ट हूँ। सभी देहधारियोंको अपना शरीर बहुत प्रिय एवं आदरकी वस्तु होता है, किन्तु तुमने मेरी सेवाके आगे । उसके क्षीण होनेकी भी कोई परवा नहीं की ।

ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपः(स्) समाधि-

विद्यात्मयोगविजिता भगवत्प्रसादाः ।

तानेव ते मदनुसेवनयावरुद्धान्

दृष्टिं(म्) प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥ 7॥

अतः अपने धर्मका पालन करते रहनेसे मुझे तप, समाधि, उपासना और योगके द्वारा जो भय और शोकसे रहित भगवत्प्रसाद-स्वरूप विभूतियाँ प्राप्त हुई है, उनपर मेरी सेवाके प्रभावसे अब तुम्हारा भी अधिकार हो गया है। मैं तुम्हें दिव्य-दृष्टि प्रदान करता हूँ, उसके द्वारा तुम उन्हें देखो ।

अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भ-

विभ्रं(म्)शितार्थरचनाः(ख्) किमुरुक्रमस्य ।

सिद्धासि भुङ्क्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान्,

दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः ॥ 8॥

अन्य जितने भी भोग है, वे तो भगवान् श्रीहरिके भ्रुकुटि विलासमात्रसे नष्ट हो जाते है. अतः वे इनके आगे कुछ भी नहीं है। तुम मेरी सेवासे भी कृतार्थ हो गयी हो; अपने पातिव्रत धर्मका पालन करनेसे तुम्हें ये दिव्य भोग प्राप्त हो गये हैं, तुम इन्हें भोग सकती हो। हम राजा हैं, हमें सब कुछ सुलभ है, इस प्रकार जो अभिमान आदि विकार हैं, उनके रहते हुए मनुष्योंको इन दिव्य भोगोंकी प्राप्ति होनी कठिन है ।

एवं(म्) ब्रुवाणमबलाखिलयोगमाया-

विद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ।

सम्प्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्-

व्रीडावलोकविलसद्धसिताननाऽऽह ॥ 9॥

कर्दमजीके इस प्रकार कहने से अपने पतिदेवको सम्पूर्ण योगमाया और विद्याओंमें कुशल जानकर उस अबलाकी सारी चिन्ता जाती रही। उसका मुख किञ्चित् संकोचभरी चितवन और मधुर मुस्कानसे खिल उठा और वह विनय एवं प्रेमसे गद्गद वाणीमें इस प्रकार कहने लगी ।

देवहूतिरुवाच

राद्धं(म्) बत द्विजवृषैतदमोघयोग-

मायाधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ।

यस्तेऽभ्यधायि समयः(स्) सकृदङ्गसङ्गो

भूयाद्वरीयसि गुणः(फ्) प्रसवः(स्) सतीनाम् ॥ 10॥

देवहूतिने कहा — द्विजश्रेष्ठ ! स्वामिन्! मैं यह जानती हूँ कि कभी निष्फल न होनेवाली योगशक्ति और त्रिगुणात्मिका मायापर अधिकार रखनेवाले आपको ये सब ऐश्वर्य प्राप्त हैं। किन्तु प्रभो! आपने विवाहके समय जो प्रतिज्ञा की थी कि गर्भाधान होनेतक मैं तुम्हारे साथ गृहस्थ सुखका उपभोग करूंगा, उसकी अब पूर्ति होनी चाहिये। क्योंकि श्रेष्ठ पतिके द्वारा सन्तान प्राप्त होना पतिव्रता स्त्रीके लिये महान् लाभ है ।

तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं(यँ),

येनैष मे कर्शितोऽतिरिरं(म्)सयाऽऽत्मा ।

सिद्ध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया

दीनस्तदीश भवनं(म्) सदृशं(वँ) विचक्ष्व ॥ 11॥

हम दोनोंके समागमके लिये शास्त्र के अनुसार जो कर्तव्य हो, उसका आप उपदेश दीजिये और उबटन, गन्ध, भोजन आदि उपयोगी | सामग्रियाँ भी जुटा दीजिये, जिससे मिलनकी इच्छासे अत्यन्त दीन, दुर्बल हुआ मेरा यह शरीर आपके अङ्ग-संगके योग्य हो जाय क्योंकि आपकी ही बढ़ायी हुई कामवेदनासे में पीडित हो रही हूँ। स्वामिन्! इस कार्यके लिये एक उपयुक्त भवन तैयार हो जाय, इसका भी विचार कीजिये ।

मैत्रेय उवाच

प्रियायाः(फ्) प्रियमन्विच्छन्, कर्दमो योगमास्थितः ।

विमानं(ङ्) कामगं(ङ्) क्षत्तस्-तर्ह्येवाविरचीकरत् ॥ 12॥

मैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी कर्दम मुनिने अपनी प्रियाकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये उसी समय योगमें स्थित होकर एक विमान रचा, जो इच्छानुसार सर्वत्र जा सकता था ।

सर्वकामदुघं(न्) दिव्यं(म्), सर्वरत्नसमन्वितम् ।

सर्वर्द्धुपचयोदर्कं(म्), मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ॥ 13॥

यह विमान सब प्रकारके इच्छित भोग-सुख प्रदान करनेवाला, अत्यन्त सुन्दर, सब प्रकारके रत्नोंसे युक्त, सब सम्पत्तियोंकी उत्तरोत्तर वृद्धिसे सम्पन्न तथा मणिमय खंभोंसे सुशोभित था ।

दिव्योपकरणोपेतं(म्), सर्वकालसुखावहम् ।

पट्टिकाभिः(फ्) पताकाभिर्-विचित्राभिरलङ्कृतम् ॥ 14॥

वह सभी ऋतुओगे सुखदायक था और उसमें जहाँ-तहाँ सम प्रकारकी दिव्य सामग्रियाँ रखी हुई थीं तथा उसे चित्र-विचित्र रेशमी झंडियों और पताकाओंसे खूब सजाया गया था ।

स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्-मञ्जुशिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ।

दुकूलक्षौमकौशेयैर्-नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥ 15॥

जिनपर भ्रमरगण मधुर गुंजार कर रहे थे, ऐसे रंग-बिरंगे पुष्पोंकी मालाओंसे तथा अनेक प्रकारके सूती और रेशमी वस्त्रोंसे वह अत्यन्त शोभायमान हो रहा था ।

उपर्युपरि विन्यस्त-निलयेषु पृथक्पृथक् ।

क्षिप्तैः(ख्) कशिपुभिः(ख्) कान्तं(म्), पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥ 16॥

एकके ऊपर एक बनाये हुए कमरोंमें अलग-अलग रखी हुई शय्या, पलंग, पंखे और आसनोंके कारण वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था ।

तत्र तत्र विनिक्षिप्त-नानाशिल्पोपशोभितम् ।

महामरकतस्थल्या, जुष्टं(वँ) विद्रुमवेदिभिः ॥ 17॥

जहाँ-तहाँ दीवारोंमें की हुई शिल्परचनासे उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी। उसमें पन्नेका फर्श था और बैठनेके लिये मूँगेकी वेदियाँ बनायी गयी थीं ।

द्वाः(स्)सु विद्रुमदेहल्या, भातं(वँ) वज्रकपाटवत् ।

शिखरेष्विन्द्रनीलेषु, हेमकुम्भैरधिश्रितम् ॥ 18॥

मूँगेकी ही देहलियाँ थीं। उसके द्वारोंमें हीरेके किवाड़ थे तथा इन्द्रनील मणिके शिखरोंपर सोनेके कलश रखे हुए थे ।

चक्षुष्मत्पद्मरागाग्र्यैर्-वज्रभित्तिषु निर्मितैः ।

जुष्टं(वँ) विचित्रवैतानैर्-महार्हैर्हेमतोरणैः ॥ 19॥

उसकी हीरेकी दीवारोंमें बढ़िया लाल जड़े हुए थे, जो ऐसे जान पड़ते थे मानो विमानकी आँखें हों तथा उसे रंग-बिरंगे चंदोवे और बहुमूल्य सुनहरी बन्दनवारोंसे सजाया गया था ।

हं(म्)सपारावतव्रातैस्-तत्र तत्र निकूजितम् ।

कृत्रिमान् मन्यमानैः(स्), स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥ 20॥

उस विमानमें जहाँ-तहाँ कृत्रिम हंस और कबूतर आदि पक्षी बनाये गये थे, जो बिलकुल सजीव से मालूम पड़ते थे; उन्हें अपना सजातीय समझकर बहुत-से हंस और कबूतर उनके पास बैठ-बैठकर अपनी बोली बोलते थे ।

विहारस्थानविश्राम-सं(वँ)वेशप्राङ्गणाजिरैः ।

यथोपजोषं(म्) रचितैर्-विस्मापनमिवात्मनः ॥ 21॥

उसमें सुविधानुसार क्रीडास्थली, शयनगृह, बैठक, आँगन और चौक आदि बनाये गये थे— जिनके कारण वह विमान स्वयं कर्दमजीको भी विस्मित-सा कर रहा था ।

ईदृग्गृहं(न्) तत्पश्यन्तीं(न्), नातिप्रीतेन चेतसा ।

सर्वभूताशयाभिज्ञः(फ्), प्रावोचत्कर्दमः(स्) स्वयम् ॥ 22॥

ऐसे सुन्दर घरको भी जब देवहूतिने बहुत प्रसन्न चित्तसे नहीं देखा, तो सबके आन्तरिक भावको परख लेनेवाले कर्दमजीने स्वयं ही कहा-

निमज्ज्यास्मिन् ह्रदे भीरु, विमानमिदमारुह ।

इदं(म्) शुक्लकृतं(न्) तीर्थ-माशिषां(यँ) यापकं(न्) नृणाम् ॥ 23॥

भीरु ! तुम इस बिन्दुसरोवरमें स्नान करके विमानपर चढ़ जाओ; यह विष्णुभगवान्का रचा हुआ तीर्थ मनुष्योंको सभी कामनाओंकी प्राप्ति करानेवाला है' ।

सा तद्भर्तुः(स्) समादाय, वचः(ख्) कुवलयेक्षणा ।

सरजं(म्) बिभ्रती वासो, वेणीभूतां(म्)श्च मूर्धजान् ॥ 24॥

अङ्गं(ञ्) च मलपङ्केन, सञ्छन्नं(म्) शबलस्तनम् ।

आविवेश सरस्वत्याः(स्), सरः(श्) शिवजलाशयम् ॥ 25॥

कमललोचना देवहूतिने अपने पतिकी बात मानकर सरस्वतीके पवित्र जलसे भरे हुए उस सरोवरमें प्रवेश किया। उस समय वह बड़ी मैली-कुचैली साड़ी पहने हुए थी, उसके सिरके बाल चिपक जानेसे उनमें लटें पड़ गयी थीं, शरीरमें मैल जम गया था तथा स्तन कान्तिहीन हो गये थे ।

सान्तः(स्)सरसि वेश्मस्थाः(श्), शतानि दश कन्यकाः ।

सर्वाः(ख्) किशोरवयसो, ददर्शोत्पलगन्धयः ॥ 26॥

सरोवरमें गोता लगानेपर उसने उसके भीतर एक महलमें एक हजार कन्याएँ देखीं। वे सभी किशोर अवस्थाकी थीं और उनके शरीरोंसे कमलकी-सी गन्ध आती थी ।

तां(न्) दृष्ट्वा सहसोत्थाय, प्रोचुः(फ्) प्राञ्जलयः(स्) स्त्रियः ।

वयं(ङ्) कर्मकरीस्तुभ्यं(म्), शाधि नः(ख्) करवाम किम् ॥ 27॥

देवहूतिको देखते ही वे सब स्त्रियाँ सहसा खड़ी हो गयीं और हाथ जोड़कर कहने लगीं, 'हम आपकी दासियाँ है. हमें आज्ञा दीजिये, आपकी क्या सेवा करें ?'

स्नानेन तां(म्) महार्हेण, स्नापयित्वा मनस्विनीम् ।

दुकूले निर्मले नूत्ने, ददुरस्यै च मानदाः ॥ 28॥

विदुरजी ! तब स्वामिनीको सम्मान देनेवाली उन रमणियोंने बहुमूल्य मसालों तथा गन्ध आदिसे मिश्रित जलके द्वारा मनस्विनी देवहूतिको स्नान कराया तथा उसे दो नवीन और निर्मल वस्त्र पहनने को दिये।

भूषणानि परार्घ्यानि, वरीयां(म्)सि दृयुमन्ति च ।

अन्नं(म्) सर्वगुणोपेतं(म्), पानं(ञ्) चैवामृतासवम् ॥ 29॥

फिर उन्होंने ये बहुत मूल्यके बड़े सुन्दर और कान्तिमान् आभूषण, सर्वगुणसम्पन्न भोजन और पीनेके लिये अमृत के समान स्वादिष्ट आसव प्रस्तुत किये ।

अथादर्शे स्वमात्मानं(म्), स्रग्विणं(वँ) विरजाम्बरम् ।

विरजं(ङ्) कृतस्वस्त्ययनं(ङ्), कन्याभिर्बहुमानितम् ॥ 30॥

अब देवहूतिने दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखा तो उसे मालूम हुआ कि वह भांति-भांतिके सुगंधित फूलोंके हारोसे विभूषित है, स्वच्छ वस्त्र धारण किये हुए है, उसका शरीर भी निर्मल और कान्तिमान् हो गया है तथा उन कन्याओंने बड़े आदरपूर्वक उसका माङ्गलिक शृङ्गार किया है ।

स्नातं(ङ्) कृतशिरः(स्)स्नानं(म्), सर्वाभरणभूषितम् ।

निष्कग्रीवं(वँ) वलयिनं(ङ्), कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥ 31॥

उसे सिरसे स्नान कराया गया है, स्नानके पश्चात् अङ्ग अङ्गमें सब प्रकारके आभूषण सजाये गये हैं तथा उसके गलेमें हार हुमेल, हाथोंमें कङ्कण और पैरोंमें छमछमाते हुए सोनेके पायजेब सुशोभित हैं ।

श्रोण्योरध्यस्तया काञ्च्या, काञ्चन्या बहुरत्नया ।

हारेण च महार्हेण, रुचकेन च भूषितम् ॥ 32॥

कमर में पड़ी हुई सोनेकी रत्नजटित करधनीसे, बहुमूल्य मणियोंके हारसे और अङ्ग अङ्गमें लगे हुए कुङ्कुमादि मङ्गलद्रव्योंसे उसकी अपूर्व शोभा हो रही है ।

सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णस्-निग्धापाङ्गेन चक्षुषा ।

पद्मकोशस्पृधा नीलै-रलकैश्च लसन्मुखम् ॥ 33॥

उसका मुख सुन्दर दन्तावली, मनोहर भौहें, कमलकी कलीसे स्पर्धा करनेवाले प्रेमकटाक्षमय सुन्दर नेत्र और नीली अलकावलीसे बड़ा ही सुन्दर जान पड़ता है ।

यदा सस्मार ऋषभ-मृषीणां(न्) दयितं(म्) पतिम् ।

तत्र चास्ते सह स्त्रीभिर्-यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥ 34॥

विदुरजी जब देवहूतिने अपने प्रिय पतिदेवका स्मरण किया, तो अपनेको सहेलियोंके सहित वहीं पाया, जहाँ प्रजापति कर्दमजी विराजमान थे ।

भर्तुः(फ्) पुरस्तादात्मानं(म्), स्त्रीसहस्रवृतं(न्) तदा ।

निशाम्य तद्योगगतिं(म्), सं(म्)शयं(म्) प्रत्यपद्यत ॥ 35॥

उस समय अपनेको सहस्रों स्त्रियोंके सहित अपने प्राणनाथके सामने देख और इसे उनके योगका प्रभाव समझकर देवहूतिको बड़ा विस्मय हुआ ।

स तां(ङ्) कृतमलस्नानां(वँ), विभ्राजन्तीमपूर्ववत् ।

आत्मनो बिभ्रतीं(म्) रूपं(म्), सं(वँ)वीतरुचिरस्तनीम् ॥ 36॥

विद्याधरीसहस्रेण, सेव्यमानां(म्) सुवाससम् ।

जातभावो विमानं(न्) त-दारोहयदमित्रहन् ॥ 37॥

शत्रुविजयी विदुर जब कर्दमजीने देखा कि देवहूतिका शरीर स्नान करनेसे अत्यन्त निर्मल हो गया है,और विवाहकालसे पूर्व उसका जैसा रूप था, उसी रूपको पाकर वह अपूर्व शोभासे सम्पन्न हो गयी है। उसका सुन्दर वक्षःस्थल चोलीसे ढका हुआ है, हजारों विद्याधरियाँ उसकी सेवामें लगी हुई हैं तथा उसके शरीरपर बढ़िया-बढ़िया वस्त्र शोभा पा रहे है, तब उन्होंने बड़े प्रेमसे उसे विमानपर चढ़ाया ।

तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययानुरक्तो

विद्याधरीभिरुपचीर्णवपुर्विमाने ।

बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्-

ताराभिरावृत इवोडुपतिर्नभः(स्)स्थः ॥ 38॥

उस समय अपनी प्रियाके प्रति अनुरक्त होनेपर भी कर्दमजीकी महिमा(मन और इन्द्रियोंपर प्रभुता) कम नहीं हुई। विद्याधरियाँ उनके शरीरकी सेवा कर रही थीं। खिले हुए कुमुदके फूलोंसे शृङ्गार करके अत्यन्त सुन्दर बने हुए वे विमानपर इस प्रकार शोभा पा रहे थे, मानो आकाशमें तारागणसे घिरे हुए चन्द्रदेव विराजमान हो ।

तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्र-

द्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ।

सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपातशिवस्वनासु

रेमे चिरं(न्) धनदवल्ललनावरूथी ॥ 39॥

उस विमानपर निवासकर उन्होंने दीर्घकालतक कुबेरजीके समान मेरुपर्वतकी घाटियोंमें विहार किया ये घाटियाँ आठों लोकपालोंकी विहारभूमि हैं; इनमें कामदेवको बढ़ानेवाली शीतल,मन्द, सुगन्ध वायु चलकर इनकी कमनीय शोभाका विस्तार करती है तथा श्रीगङ्गाजीके स्वर्गलोकसे गिरनेकी मङ्गलमय ध्वनि निरन्तर गूंजती रहती है। उस समय भी दिव्य विद्याधरियोंका समुदाय उनकी सेवामें उपस्थित था और सिद्धगण वन्दना किया करते थे ।

वैश्रम्भके सुरसने, नन्दने पुष्पभद्रके ।

मानसे चैत्ररथ्ये च, स रेमे रामया रतः ॥ 40॥

इसी प्रकार प्राणप्रिया देवहूतिके साथ उन्होंने वैश्रम्भक, सुरसन, नन्दन,पुष्पभद्र और चैत्ररथ आदि अनेकों देवोद्यानों तथा मानस सरोवरमें अनुरागपूर्वक विहार किया ।

भ्राजिष्णुना विमानेन, कामगेन महीयसा ।

वैमानिकानत्यशेत, चरं(लँ)ल्लोकान् यथानिलः ॥ 41॥

उस कान्तिमान् और इच्छानुसार चलनेवाले श्रेष्ठ विमानपर बैठकर वायुके समान सभी लोकोंमें विचरते हुए कर्दमजी विमानविहारी देवताओंसे भी आगे बढ़ गये ।

किं(न्) दुरापादनं(न्) तेषां(म्), पुं(म्)सामुद्दामचेतसाम् ।

यैराश्रितस्तीर्थपदश्-चरणो व्यसनात्ययः ॥ 42॥

विदुरजी ! जिन्होंने भागवान् के भवभयहारी पवित्र पादपद्मों का आश्रय लिया है, उन धीर पुरुषोंके लिये कौन-सी वस्तु या शक्ति दुर्लभ है ।

प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं(म्), पत्न्यै यावान् स्वसं(म्)स्थया ।

वह्वाश्चर्यं(म्) महायोगी, स्वाश्रमायन्यवर्तत ॥ 43॥

इस प्रकार महायोगी कर्दमजी यह सारा भूमण्डल, जो द्वीप वर्ष आदिकी विचित्र रचनाके कारण बड़ा आश्चर्यमय प्रतीत होता है, अपनी प्रियाको दिखाकर अपने आश्रमको लौट आये ।

विभज्य नवधाऽऽत्मानं(म्), मानवीं(म्) सुरतोत्सुकाम् ।

रामां(न्) निरमयन् रेमे, वर्षपूगान् मुहूर्तवत् ॥ 44॥

फिर उन्होंने अपने को नौ रूपोंमें विभक्त कर रतिसुख के लिये अत्यन्त उत्सुक मनुकुमारी देवहूतिको आनन्दित करते हुए उसके साथ बहुत वर्षोंतक विहार किया, किन्तु उनका इतना लम्बा समय एक मुहूर्तके समान बीत गया ।

तस्मिन् विमान उत्कृष्टां(म्), शय्यां(म्) रतिकरीं(म्) श्रिता ।

न चाबुध्यत तं(ङ्) कालं(म्), पत्यापीच्येन सङ्गता ॥ 45॥

उस विमानमें रतिसुखको बढ़ानेवाली बड़ी सुन्दर शय्याका आश्रय ले अपने परम रूपवान् प्रियतमके साथ रहती हुई देवहूतिको इतना काल कुछ भी न जान पड़ा ।

एवं(यँ) योगानुभावेन, दम्पत्यो रममाणयोः ।

शतं(वँ) व्यतीयुः(श्) शरदः(ख्), कामलालसयोर्मनाक् ॥ 46॥

इस प्रकार उस कामासक्त दम्पतिको अपने योगबलसे सैकड़ों वर्षोंतक विहार करते हुए भी वह काल बहुत थोड़े समयके समान निकल गया ।

तस्यामाधत्त रेतस्तां(म्), भावयन्नात्मनाऽऽत्मवित् ।

नोधा विधाय रूपं(म्) स्वं(म्), सर्वसङ्कल्पवित्तिभुः ॥ 47॥

आत्मज्ञानी कर्दमजी सब प्रकार के सङ्कल्पोंको जानते थे; अतः देवहूतिको सन्तानप्राप्तिके लिये उत्सुक देख तथा भगवान्‌के आदेशको स्मरणकर उन्होंने अपने स्वरूपके नौ विभाग किये तथा कन्याओं की उत्पत्तिके लिये एकाग्रचित्तसे अर्धाङ्गरूपमें अपनी पत्नी की भावना करते हुए उसके गर्भ में वीर्य स्थापित किया ।

अतः(स्) सा सुषुवे सद्यो, देवहूतिः(स्) स्त्रियः(फ्) प्रजाः ।

सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो, लोहितोत्पलगन्धयः ॥ 48॥

इससे देवहूतिके एक ही साथ नौ कन्याएँ पैदा हुई। वे सभी सर्वाङ्गसुन्दरी थीं और उनके शरीरसे लाल कमलकी-सी सुगन्ध निकलती थी ।

पतिं(म्) सा प्रव्रजिष्यन्तं(न्), तदाऽऽलक्ष्योशती सती ।

स्मयमाना विक्लवेन, हृदयेन विदूयता ॥ 49॥

लिखन्त्यधोमुखी भूमिं(म्), पदा नखमणिश्रिया ।

उवाच ललितां(वँ) वाचं(न्), निरुध्याश्रुकलां(म्) शनैः ॥ 50॥

इसी समय शुद्ध स्वभाववाली सती देवहूतिने देखा कि पूर्व प्रतिज्ञाके अनुसार उसके पतिदेव संन्यासाश्रम ग्रहण करके वनको जाना चाहते हैं, तो उसने अपने आँसुओंको रोककर ऊपरसे मुसकराते हुए व्याकुल एवं संतप्त हृदयसे धीर-धीरे अति मधुर वाणीमें कहा। उस समय वह सिर नीचा किये हुए अपने नखमणिमण्डित चरणकमलसे पृथ्वीको कुरेद रही थी ।

देवहूतिरुवाच

सर्वं(न्) तद्भगवान् मह्य-मुपोवाह प्रतिश्रुतम् ।

अथापि मे प्रपन्नाया, अभयं(न्) दातुमर्हसि ॥ 51॥

देवहूतिने कहा- भगवन्! आपने जो कुछ प्रतिज्ञा की थी, वह सब तो पूर्णतः निभा दी; तो भी मैं आपकी शरणागत हूँ, अतः आप मुझे अभयदान और दीजिये ।

ब्रह्मन् दुहितृभिस्तुभ्यं(वँ), विमृग्याः(फ्) पतयः(स्) समाः ।

कश्चित्स्यान्मे विशोकाय, त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ 52॥

ब्रह्मन् ! इन कन्याओंके लिये योग्य वर खोजने पड़ेंगे और आपके वनको चले जानेके बाद मेरे जन्म-मरणरूप शोकको दूर करनेके लिये भी कोई होना चाहिये ।

एतावतालं(ङ्) कालेन, व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो ।

इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन, परित्यक्तपरात्मनः ॥ 53॥

प्रभो ! अबतक परमात्मासे विमुख रहकर मेरा जो समय इन्द्रियसुख भोगनेमें बीता है, वह तो निरर्थक ही गया।

इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या, प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः ।

अजानन्त्या परं(म्) भावं(न्), तथाप्यस्त्वभयाय मे ॥ 54॥

आपके परम प्रभावको न जाननेके कारण ही मैंने इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त रहकर आपसे अनुराग किया, तथापि यह भी मेरे संसार भयको दूर करनेवाला ही होना चाहिये ।

सङ्गो यः(स्) सं(म्)सृतेर्हेतु-रसत्सु विहितोऽधिया ।

स एव साधुषु कृतो, निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥ 55॥

अज्ञानवश असत्पुरुषोंके साथ किया हुआ जो संग संसार-बन्धनका कारण होता है, वही सत्पुरुषोंके साथ किये जानेपर असङ्गता प्रदान करता है ।

नेह यत्कर्म धर्माय, न विरागाय कल्पते ।

न तीर्थपदसेवायै, जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ 56॥

संसारमें जिस पुरुषके कर्मों से न तो धर्मका सम्पादन होता है, न वैराग्य उत्पन्न होता है और न भगवान्की सेवा ही सम्पन्न होती है वह पुरुष जीते ही मुर्देके समान है ।

साहं(म्) भगवतो नूनं(वँ), वञ्चिता मायया दृढम् ।

यत्त्वां(वँ) विमुक्तिदं(म्) प्राप्य, न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥ 57॥

अवश्य ही मैं भगवान्की मायासे बहुत ठगी गयी, जो आप जैसे मुक्तिदाता पतिदेवको पाकर भी मैंने संसार-बन्धनसे छूटनेकी इच्छा नहीं की ।

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहं(म्)स्यां(म्) सं(म्)हितायां(न्)

तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने त्रयोविं(म्)शोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शान्तिः(श्)शान्तिः(श्)शान्तिः ॥